



नम सर्वज्ञाय

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचित्त-
अन्ययोगव्यवच्छेदट्टात्रिंशिकास्तवनटीका

श्रीमल्लिषेणसूरिप्रणीता

स्याद्वादमञ्जरी

एम्० ए० इत्युपपदधारिणा शास्त्रिणा

जगदीशचन्द्रेण

हिन्दीभाषाया अनुवादिता

उपोद्घात-परिशिष्टानुक्रमणादिभिः सयोज्य च
सम्पादिता

सा च मुम्बापुरीस्थ

श्रेष्ठि मणीलाल, रेवाशङ्कर जगजीवन जौहरी

परमश्रुतप्रभावकमण्डलाधिकारिभिः

मुम्बय्या न्यूभारत-मुद्रणाग्ये मुद्रयित्वा प्राकाश्य नीता

रुतुवर्षाण सवत् २४६०

विक्रम सवत् १९९१

ईसवी सन् १९३५

मूल्य सार्द्धरूप्यरुचतण

प्रकाशक—

डॉ. मणीलाल, रियासकर जगजीवन जोहरी

आ० 'यवस्थापक परमश्रुतप्रभावकमंडल

जोहरीबाजार, बम्बई न० ६



रघुनाथ दिवाजी देसाई,
'यू भारत प्रिंटिंग प्रस, ६, बेळेवाडी
गिरगाव, बम्बई न ४

विषयानुक्रमणिका ।

	विषय	पृष्ठ	
	भाष्यन—लेखक—श्रीयुत भिखनलाल आत्रेय एम ए, डी लिट्, दर्शनशास्त्राध्यक्ष काशी विश्वविद्यालय	7	
	प्रकाशकका निवेदन	8	
	सम्पादकीय निवेदन	9-10	
	ग्रन्थ और ग्रथकार	11-34	
	हेमचन्द्र	11-14	
	महिषेण	15-22	
	जैनदर्शनमें स्याद्वादका स्थान	23-31	
	स्याद्वादका मौलिक रूप और उसका गूढ़ रहस्य	23-26	
	स्याद्वादपर एक ऐतिहासिक दृष्टि	26-29	
	स्याद्वादका जैनतर साहित्यमें स्थान	29-32	
	स्याद्वादका समन्वयदृष्टिमें स्थान	32-34	
	स्याद्वादमजरीका अनुवाद	१-३४५	
श्लोक १	टीकाकारका मंगलाचरण	२	
	अवतरणिका	३	
	अनन्तविशान आदि भगवानके चार विशेषण	३	
	चार मूल अतिशय	४	
	उक्त विशेषणोंकी सायकता	४-७	
	श्रीवर्धमान आदि विशेषणोंकी सायकता	८-९	
	श्लोकका दूसरा अर्थ	१०-११	
	श्लोक २	भगवानके स्याद्यवादका प्ररूपण	१२-१३
	श्लोक ३	भगवानके नयमागकी महत्ता	१४-१६
	श्लोक ४-१०	स्याद्यवैशेषिकदर्शनपर विचार	१६-२१
श्लोक ४	सामान्यविशेषवाद	१६-२०	
श्लोक ५	नित्यानित्यवाद	२०-२८	
	दीपकका नित्यानित्यत्व	२०-२४	
	अधकारका पौद्गलिकत्व	२२-२४	
	आकाशमें नित्यानित्यत्व	२४-२७	
	नित्यका रूप	२७	
	पातञ्जलयोग और वैशेषिकके नित्यानित्यवादका समर्थन	२८-२९	
	पहला नित्यानित्यवादमें अधप्रियाना अभाव	३०-३६	
श्लोक ६	इभरके जगत्कृन्वर विचार	३८-५८	
	इभरका जगत्कर्ता सिद्ध कराने प्रयत्न	३८-४३	
	पूर्वजाका स्वप्न	४५-५७	
	विशेष गुणत्वकी सिद्धि	४९-७०	
	इत्थरवादके अग्रगममें पूर्वजाके सिद्धि	५२-७३	

	विषय	पृष्ठ
श्लोक ७	समानाधिकार सार	५१-६५
श्लोक ८	सत्ता भिन्न पदाय है—पूरण वैश्वरिकादे छह पदाय मान आत्मन भिन्न है—पूरण मान शन और आत्मन ही है—पूरण सत्ता भिन्न पदाय नहीं है—उत्तरण शान आत्मन भिन्न नहीं है—उत्तरण मान शान और आत्मन है—उत्तरण	६५-७२ ७२-७३ ७३-७४ ७४-७५ ७५-७६ ७६-७७
श्लोक ९	आत्मन सव पारम्परिक खडन जन्म-मरण प्रक्रममें भेद आत्मन शरीरपरिणत मानमें शान और उत्तरण समानता आत्मन कथित पारम्परिक सिद्धि समुद्धाना लक्षण और उत्तरण भेदोंका विस्तृत रूप	७७-७८ ७८ ७८-७९ ७९ ७९-८०
श्लोक १०	वैश्वरिकाद्वारा प्रमाणित छह, आत्मन और निष्काम भय कारण नहीं हो सका वैश्वरिकाका सार पदाय वैश्वरिकाका प्रमाणों लक्षणका खडन वैश्वरिकाका कारण प्रमाण प्रमाणका सार उत्तरण भेद चौबीस प्रकारकी आत्मन-उत्तरण विस्तृत रूप कारण प्रमाणों निष्काम-उत्तरण विस्तृत रूप	८०-८१ ८१ ८१-८२ ८२ ८२-८३ ८३-८४ ८४-८५
श्लोक ११-१२	मीमांसकाकी मायाभाँवर विचार वेदमें कहीं कुछ हिंसा घमना कारण है—पूरणका सार जिनमदिरन निमाण करामें पुण्यवच सत्य लक्षणों वैदिक हिंसाका विचार "यान" और वेदान्तियोंका वेदान्त हिंसाका विचार श्रद्ध करामें दोष आत्मन अशौचनलिका खडन	८५-८६ ८६-८७ ८७-८८ ८८-८९ ८९-९० ९०-९१
श्लोक १३	पराशरानुवादी मीमांसक और एक ज्ञानना अथ शानन माननेवाले व्यापरेपरिसराना सार ज्ञानमें स्वप्रकाशन नहीं मान जाय भेद मीमांसकाका पूरण आत्मन उत्तरण सार "वैश्वरिकाद्वारा" मान्यताना खडन	९१-९२ ९२-९३ ९३-९४ ९४-९५ ९५-९६
श्लोक १४	ब्रह्मज्ञानादिका मायाभाँवर विचार वेदान्तियोंका पूरण और उत्तरण सार असत्त्वयति आदि व्यापारिका विस्तृत रूप	९६-९७ ९७-९८ ९८-९९

विषय

पृष्ठ

अद्वैतवादीयोंक द्वारा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे ब्रह्मकी सिद्धि १५८-१६०
अद्वैतवात्का खडन १६०-१६२

श्लोक १३

कथंचित् सामान्यविशेषरूप वाच्य-वाचक भावना समर्थन १६१-१८२
एकान्त सामान्यवादी अद्वैतवादी, मीमांसक और सांख्यीका पूर्वपक्ष १६५-१६७
एकान्त विशेषवादी बौद्धोंका पूर्वपक्ष १६७-१६८
स्वतन्त्र सामान्य विशेषवादी न्यायवैशेषिकोंका पूर्वपक्ष १६९
उक्त तीनों पक्षोंका खडन १७०-१७२
गन्दना पौद्गलिकत्व १७२-१७४
आत्मना कथंचित् पौद्गलिकत्व १७४
इह और अथना कथंचित् तादात्म्य सवध १७७-१७९
सम्पूर्ण पदार्थोंमें भावाभावत्वकी सिद्धि १७९-१८०
अपाह, जाति, निधि आदि शब्दार्थना खडन १८०-१८१

श्लोक १५

मण्डयान सिद्धान्तोंपर विचार १८२-१९५
सांख्यीका पूर्वपक्ष १८२-१८८
पूर्वपक्षका खडन १८८-१९२
सांख्यीकी अथ विरुद्ध कल्पनाय १९३-१९४

श्लोक १६-१९

श्लोक १६ सीमातिक्रम, वैभाषिक और यागाचार बौद्धोंक सिद्धान्तोंका खडन १९७
प्रमाण और प्रमिति अभिन्न हैं-पूर्वपक्षका खडन १९६-२०१
प्राणकवाद और उमका खडन २०१-२०५
ज्ञान पदार्थमें उत्पन्न होकर पदार्थको जानता है-इसका खडन २०६-२११
ज्ञानाद्वैत-पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष २११-२२१

श्लोक १७

शून्यवादियोंका खडन २२६-२४०
प्रमाणा, प्रमय, प्रमाण और प्रमितिकी असिद्धि-पूर्वपक्ष २२९-२३१
उत्तरपक्ष २३१-२३९
आत्मिकी सिद्धि २३२-२३६
सर्वज्ञकी सिद्धि २३६-२४०
प्रमय, प्रमा और प्रमितिकी सिद्धि २३८-२३९

श्लोक १८

दार्शनिकवादमें इतप्रणाल आदि दाप २४०-२४८
दार्शनिकवादमें परिवर्तितरूप २४८

श्लोक १९

वासना और अज्ञानमिति भिन्न, अभिन्न, और अनुभय रूपस सिद्धि नहीं होती २४९-२५५
बौद्धमतमें वाग्ध (आल्यविज्ञान) में दोष २५२-२५३

श्लोक २०

आत्ममनपर विचार २५६-२६२
केवल प्रत्यक्षके प्रमाण माननेवाले चार्वाकियोंका खडन २५६-२५९
भौतिकवादका खडन २६०-२६१

विषय
अयोग्यवच्छेदिका
परिशिष्ट
जैन परिशिष्ट

पृष्ठ

३५७

४४७

३५७-३५४

दु पमार

३५७-३५९

केवली

३५९-३६१

अतिशय

३६२-३६३

एव व्योमाधि

३६३-३६५

अपुनत्रघ

३६५

प्रदेश

३६५-३६७

केवलीसमुदात

३६७-३६९

लान

३६९-३७१

भवतामपि

३७१-३७२

आधाकम

३७२-३७३

द्रव्यपट्टक

३७३-३७८

हादसाग

३७८-३८१

प्राण

३८१-३८२

ज्ञानके भेद

३८२-३८३

निगाद

३८३-३८४

बौद्ध परिशिष्ट

३८५-४०७

बौद्धदशन

३८५

बौद्धोके मुख्य सम्प्रदाय

३८५-३८६

सौत्रान्तिक

३८५-३८८

वैभाषिक

३८८-३८९

सौत्रान्तिक-वैभाषिकोंके सिद्धान्त

३८९-३९२

शून्यवाद

३९२-३९६

निगानवाद

३९६-३९९

बौद्धाका अनात्मवाद

३९९-४०७

बौद्ध साहित्यमें आत्मा सबधा मान्यताए

४०४-४०७

धैरोपिक परिशिष्ट

४०८

न्यायवैशेषिकदर्शन

४०८-४०९

न्यायवैशेषिकोंके ममानतत्र

४१०

न्यायवैशेषिकोंमें मतभेद

४११

वैदिग्गसाहित्यमें हृक्षरका त्रिविध रूप

४११-४१३

हृक्षरके अस्तित्वमें प्रमाण

४१३-४१५

हृक्षर विषयके शक्यते

४१५-४१७

हृक्षरके त्रिययमें पाश्चात्य विद्वानाका मत

४१७-४१८

व्यायवैशेषिक-साहित्य

४१८-४१९

भाषिकी ति

सर्वजकी लि

प्रसंग, प्रमा

क्षणिकवादमें

क्षणिकवादके

वामना और

बौद्धमतमें वा

वानाकमतपर

केवल प्रत्यक्ष

भौतिकवादका

	रुप
सांख्ययोग परिशिष्ट	
संख्य, योग और ये दर्शनार्थी दुःख	४३०-६०३
संख्ययोगशास्त्र	४३०
सांख्यदर्शन	६१
सांख्यदर्शनके प्रस्ताव	११३-११३
योगदर्शन	१०१-१०१
वेद और वेददर्शनमें योग	४३६
मीमांसक परिशिष्ट	
मीमांसकः क आचार विचार	१६-४३
मीमांसकान् गिज्ञान	१३१-१३३
मीमांसक और वेद	१३१
मीमांसकदर्शनका स्थिति	१३१-१३४
वेदान्त परिशिष्ट	
वेदान्तदर्शन	४३६-४३७
वेदान्तशास्त्र	४३७
वेदान्तदर्शनका स्थापना	४३७-४४०
शंकरका भाषायात्रा	४४०-४४१
चाणक्य परिशिष्ट	
चाणक्य	४४१-४४४
चाणक्य लक्षण (उद्घात)	४४४
चाणक्यशास्त्र	४४४
विविध परिशिष्ट	
आचारिक	४४५-४४७
संन प्रतिसंन	४४५-४४६
नियान्तादी	४४६
अनुक्रमणिका	
स्वाध्यायदर्शनकी अवतरण (१)	१-११
स्वाध्यायदर्शनमें निर्दिष्ट ग्रन्थ और मन्त्रकार (२)	१-१८
अध्यायपरिच्छदिकाके श्लोकोंकी सूची (३)	११-२४
अध्यायपरिच्छदिकाके शब्दोंकी सूची (४)	२७
स्वाध्यायदर्शनकी 'पाय' (५)	२६
स्वाध्यायदर्शनकी विशेष शब्दोंकी सूची (६)	२७
स्वाध्यायदर्शनकी टिप्पणीमें उपयुक्त ग्रन्थ (७)	२१-३६
अध्यायपरिच्छदिकाके श्लोकोंकी सूची (८)	३७-३८
अध्यायपरिच्छदिकाके शब्दोंकी सूची (९)	३९
अध्यायपरिच्छदिकाकी टिप्पणीमें उपयुक्त ग्रन्थ (१०)	४०-४१
परिशिष्टोंके विषय शब्दोंकी सूची (११)	४१
परिशिष्टोंमें उपयुक्त ग्रन्थ (१२)	४२-४३
स्वाध्यायदर्शनमें उपयुक्त ग्रन्थ (१३)	४४-४६
	४७-४९

प्राक्कथन ।

आज मेरे लिए यहें हर्ष और सौभाग्यका अन्तर है, कि मैं अपन सुयोग्य शिष्य तथा प्रिय मित्र श्री जगदीशचन्द्र जैन एम ए द्वारा अनुवादित तथा संपादित स्याद्वादमञ्जरीके आदिम कतिपय शब्द लिख रहा हूँ। प्रथ, प्रथकार, प्रथके सिद्धान्तों और उनसे सम्बद्ध अनेक विषयोंका परिचय तो जगदीश चन्द्रजीने पाठकोंको सरल और निर्दोष राष्ट्रीय भाषामें भली भाँति दे ही दिया है। मुझ इस विषयमें यहाँपर अधिक कुछ नहीं कहना है। मेरे लिये तो एक ही विषय रह गया है। वह है पाठकोंको सम्पादक महोदयका परिचय देना।

श्री जगदीशचन्द्र जैन सुप्रसिद्ध श्री वाशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अग्रगण्य स्नातकोंमेंमें हैं। उन्होंने वर्षोंसे सन् १९३२ में दशन (Philosophy) में एम ए की उपाधि प्राप्त की थी। विश्वविद्यालयके गभमें भारतीय-दर्शन—विशेषत जैन और बौद्ध—के साथ साथ उन्होंने पाश्चात्य दर्शनका गहरा और विस्तृत अध्ययन किया, और दार्शनिक समस्याओंपर निष्पक्ष भावसे स्वतंत्र विचार किया। मुझे उनके आचार विचार और आदर्शोंसे खूब परिचिति है, क्योंकि वे कई बप तक मेरी निरीक्षरता (Wardenship) में छात्रावासमें रहें हैं, और उन्होंने मेरे साथ मनोविज्ञान (Psychology) और भारतीय-दर्शनका अध्ययन किया है। सायकालके भ्रमणमें अक्सर उनके साथ दार्शनिक विषयोंपर बातचीत हुआ करती थी। अपनी इस परिचिति आधारपर मैं निस्कोच यह कह सकता हूँ, कि श्री जगदीशचन्द्रजी एष बहुत होनहार दार्शनिक विद्वान और लेखक हैं। दार्शनिकोंके दा सबसे बड़े गुण—निष्पक्ष और न्यायपूर्वक विचार और समन्वय बुद्धि—उनमें बृट बृट कर भरे हैं। वे केवल दार्शनिक ही नहीं हैं, सहृदय भी हैं। यही कारण है कि अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और अहिंसावादमें उनकी भ्रद्धा है। स्याद्वादमञ्जरीमें इन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है, इसीलिये उन्होंने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थका राष्ट्रभाषामें अनुवाद तथा सम्पादन किया है। अनुवाद और सम्पादन बहुत ही उत्तम रीतिसे हुए हैं। प्रत्येक श्लोक और उसकी टीकाके अनुवादके अन्तमें जो भाषा दीया गया है, उसमें विषयका बहुत सरलतामें प्रतिपादन हुआ है। कहीं कहीं जो टिप्पणियों दी गई हैं, वे भी बहुत उपयोगी हैं। अन्तमें सर दर्शनात्मक विशेषत बौद्धदर्शन सम्बन्धी—परिशिष्टों और कई प्रश्नारकी अनुसन्धिकाओंसे पुस्तकको बहु मूल्य बना दिया है। गुणश पाठक स्वय ही समझ जायेंगे कि सम्पादक महोदयने कितना परिश्रम किया है।

† मेरी यह हार्दिक इच्छा है, कि इस पुस्तकका प्रचार खूब हो, और विशेषत उन लोगोंमें हो जो जैनधर्मावलम्बी नहीं हैं। सत्य और उच्च भाव और विचार किनी एक जाति या मजहबवालोंकी नस्तु नहीं है। इनपर मनुष्यमात्रका अधिकार है। मनुष्यमात्रको अनेकान्तवादी, स्याद्वादी और अहिंसावादी हानकी आवश्यकता है। केवल दार्शनिक क्षेत्रमें ही नहीं धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रमें, विशेषत इस समय—जब कि समस्त भूमण्डलकी सभ्यताका एकीकरण हो रहा है और सब देशों, जातियों और मतोंके लोगोंका सपका दिन पर दिन अधिन होता जा रहा है—इन ही सिद्धान्तोंपर आरुढ़ होनेसे ससारका कल्याण हो सक्ता है। मनुष्य-जीवनमें कितना वाञ्छनीय परिवर्तन हो जाय, यदि सभी मनुष्योंको प्रारम्भ से शिक्षा मिल कि सब ही मत सापेक्ष हैं, कोई भी मत सत्ता सत्य अथवा असत्य नहीं है, पूण सत्यमें सब मतोंका समन्वय होना चाहिये, और सबको दूसरोंसे भाष वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि वे दूसरोंसे अपन प्रति चाहते हैं। मैं तो इस दृष्टिके प्राप्त कर लेनेको ही मनुष्यका सभ्य होना समझता हूँ। मैं जाता करता हूँ कि यह पुस्तक पाठकोंको इस प्रकारकी दृष्टि प्राप्त करनेमें सहायक होगी।

भिक्षुजनलाल आश्रय एम ए, डी लिट्,

दर्शनाध्यापक,

वाशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

आपाठ पूर्णिमा १९९२

प्रकाशकका निवेदन ।

लगभग २४ वर्षक बाद यह ग्रन्थ फिर प्रकाशित किया जा रहा है। पहले इसके एक अंश (पत्र १०८ तक) की टीका प० जगदीशचन्द्रजी साहिल्यशास्त्रीवृत्त आर श्याम (पत्र २१७ तक) की प० प्रशाधरजी शास्त्रीवृत्त थी। अत्रका बार प० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए० ने इसका सम्पादन किया है, और आधुनिक तुलनात्मक पद्धतिमें ग्रन्थको सगद्गसुन्दर बनानेके लिए उन्होंने यथेष्ट परिश्रम किया है। गहन विषयके विद्यार्थियोंके लिए इममें अत्र काफ़ी मसाला इकट्ठा कर दिया गया है। आशा है कि इसका आदर होगा। वास्तवमें यह टीका और इसके परिशिष्टादि सब अंग विन्कुल नये हैं। पहले सम्स्करणमें इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सिवाय इमके कि मूल ग्रन्थ वही है, जो पहले था।

प० म० की तरफसे और भी कई नये महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ सुसम्पादित होकर उप रहे हैं।

जाहंगी प्रचार, बम्बई
ज्येष्ठ कृष्ण ३०
वि स १९९१

}

निम्नक—
मणीलाल जाहंगी

सम्पादकीय निवेदन ।

आज तक स्याद्वादमजरीके निम्न लिखित संस्करण निकल चुक हैं—

- | | |
|---|-------------------------------|
| १ यशोविजय ग्रन्थमाला काशी | ५ चौखभा सीरीज काशी |
| २ अगस्त्य ब्रजो भैरोदाजी सेठिया बीकानेर | ६ आहतमतप्रभाकर पटना |
| ३ हीरालाल हसराम जामनगर | ७ भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पटना |
| ४ रायचंद्रशास्त्रमाला बम्बई | |

इन आवृत्तियोंसे प्रस्तुत स्याद्वादमजरीकी प्रस्तुत आवृत्तिमें कुछ विशेषता हैं या नहीं, इसका निणय तो स्वयं विश पाठकगण ही ठीक ठीक कर सकेंगे। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि प्रस्तुत ग्रन्थकी अनेक दृष्टियोंसे सागोपाग परिपूर्ण बनानेका यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत संस्करणका संक्षिप्त परिचय

१ सशोधन—इस ग्रन्थका सशोधन रायचंद्रमालाकी एक प्राचीन और शुद्ध हस्तलिखित प्रतिक आधारसे किया गया है। इस प्रतिके आदि अथवा अन्तमें किसी सबूत आदिका निर्देश न होनेसे इस प्रतिमा ठीक ठीक समय मालूम नहीं हो सका, परन्तु प्रति प्राचीन मान्दम होती है।

२ संस्कृतटिप्पणी—संस्कृतके अभ्यासियोंके लिये मूल पाठके कठिन स्थलोंको स्पष्ट करनेके लिये इस ग्रन्थमें संस्कृतकी टिप्पणिया लगाई गई हैं। इन टिप्पणियोंमें सेठ मोतीलाल लाधाजीद्वारा संपादित स्याद्वादमजरीकी संस्कृत टिप्पणियोंका भी उपयोग किया गया है। एतदथ हम उक्त सम्पादन महादयका आभार मानते हैं।

३ अनुवाद—अनुवादको यथाशक्य सरल और प्रवाहबद्ध बनानेका प्रयत्न किया गया है। इसके लिये अनुवाद करते समय बहुतेसे शब्दोंकी छूट भी लेनी पड़ी है। विषयका वर्गीकरण करनेके साथ विषयको सरल और स्पष्ट बनानेके लिये न्यायन रूटिन विषयको 'शका—समाधान,' 'वादी—प्रतिवादी,' 'स्पष्ट' रूपमें उपस्थित किया गया है। प्रत्येक श्लोकके अन्तमें श्लोकका संक्षिप्त भावार्थ दिया गया है। अनेक स्थलोंपर भावाय लिखते समय ग्रन्थक मूल विषयके साथ विषयोंकी भी विस्तृत चर्चा की गई है (उदाहरणके लिये देखो श्लोक २८—२९ का भाषा)। कहीं कहीं हिन्दी अनुवाद करते समय और भावाय लिखते समय हिन्दीकी टिप्पणिया भी जोड़ा गई है।

४ अयोग्यवच्छेदिका—इन संस्करणमें हेमचन्द्रकी दूसरी कृति अयोग्यवच्छेदिकाका अनुवाद भी द दिया गया है। इसके साथ तुलनाके लिये सिद्धसेन और समतमद्वारा कृतियोंमेंसे टिप्पणियोंमें अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

५ परिशिष्ट—यह इस संस्करणका महत्वपूर्ण भाग है। इसमें जैन, बौद्ध, न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, पृथ्वीमासा, वेदान्त, चावाक और त्रिषिध नामके आठ परिशिष्ट गभित हैं। जैन परिशिष्टमें तुलनामक दृष्टिसे जैन पारिभाषिक शब्दों और विचारोंका स्पष्टीकरण है। बौद्ध परिशिष्टमें बौद्धों का विशानवाद, मत्त्ववाद, अनात्मवाद आदि दार्शनिक सिद्धांतोंका पाली, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाके प्रथम आधारेण प्रामाणिक विवरण किया गया है। आशा है इसका पढ़नेमें पाठकोंकी बौद्ध दर्शन संबंधी गहनतमी भ्रातिपूर्ण धारणायें दूर होंगी। तीसरे न्यायवैशेषिक परिशिष्टमें इश्वर संबंधी चर्चा विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। चौथे सांख्ययोग परिशिष्टमें सांख्य, योग, जैन और बौद्धदर्शनोंकी तुलना करते समय जो ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति संबंधी भेद दिखाया गया है, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। पाचवें परिशिष्टमें मीमांसक और जैनोंकी तुलना, छठेमें शक्यक मायावादकी विशानवाद और शून्यवादसे तुलना, सातवेंमें जायकमत और आनन्दधनजीका उसे जिनभगवानकी कृत बताना, और आठवें परिशिष्टमें आजीविक संप्रदाय—पानपूवक पढ़ने योग्य विषय हैं।

६ अनुक्रमणिका—इस गहराणमें नीचे लिखी तरह अनुक्रमणिकाएँ लगाई गई हैं—

(१) स्वाज्ञादमन्त्रीक अवतरण—इन आचारणामें यह अनुक्रमणिका अपारणोंकी भेद स्वयं खोज की है। य अवतरण प्राय सेठ मोतीलाल लक्ष्मी और प्रा मुखर्जी स्वाज्ञादमन्त्रीक आचारण त्रिय गये हैं।

(२) स्वाज्ञादमन्त्रीमें निर्दिष्ट प्रथ और प्रथकार

(३) अन्ययोग्यवच्छेदिकाक श्लोकोंकी सूची

(४) अयोग्यवच्छेदिकाक श्लोकोंकी सूची

(५) स्वाज्ञादमन्त्रीक न्याय

(६) स्वाज्ञादमन्त्रीके श्लोकोंकी सूची

(७) स्वाज्ञादमन्त्रीके महत्त्व और हिन्दी लिपिणामें उपयुक्त प्रथ और प्रथकार

(८) अयोग्यवच्छेदिकाके श्लोकोंकी सूची

(९) अयोग्यवच्छेदिकाके श्लोकोंकी सूची

(१०) अयोग्यवच्छेदिकाके श्लोकोंमें उपयुक्त प्रथ

(११) परिशिष्टके श्लोकोंकी सूची

(१२) परिशिष्टमें उपयुक्त प्रथ

(१) सम्पादनमें उपयुक्त प्रथ

उपसंहार

जिस समय मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें एम ए के काममें अपने आदर्शाध्य अध्यापक प्रा पण्डितजी अधिपति एम ए से स्वाज्ञादमन्त्री पढ़ता था, उस समय मुझे उनके साथ दानराजक अनक विरसोपर चर्चा करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। उसी समयसे मेरी इच्छा थी, कि मैं स्वाज्ञादमन्त्रीके ऊपर कुछ लिखकर जैनदरशन तथा राष्ट्र भावकी सेवा करूँ। सवागण विठ्ठल वर भगवन्में आना हुआ, और मेरी रायचन्द्र जैनशास्त्रज्ञान व्यवस्थापक धीरुभागीराम रसायनक जगन्नाथ शर्माजी की स्वीकृति मिलते ही स्वाज्ञादमन्त्रीका काम आरम्भ कर दिया। इस प्रथक आरम्भ हमनी समाप्ति दानराज अनक सज्जनोंने जा मुझ अनेक प्रकारसे सहायता दिया है, उन्में लिये मैं सबका आभार मानता हूँ। एही धीरुभागीराम डा. आभाई मालवीयोंने स्वाज्ञादमन्त्रीक मूल्य और उसके अनुवादके बहुतस प्रसन्नता का भाव लिया है। मेरे जेठु भाईलाल प दरबारीरामजी व्यापारीयने इस प्रथ सबर्षी अनक प्रसन्नता चर्चामें हम लकर अपना बहुतस समय खर्च किया है। स्थानाय जुद्धिस्ट सामायरीक मन्त्रा प ए पाठनी ए, एएएए नी, वकील पम्बई हायकोर्टने स्थानीय एगिथादिज लायबरीमें मुझ हरत प्रकारके सुभीत दिशान्तर, तथा एन आर पाठनी ए न अपनी लाइब्रेरीमेंस बहुतनी पुराके दन्तर मुझ सहायता पहुँचाई है। रायचन्द्रशास्त्रज्ञान भेनजर धायुत कु दनलालजान भर लिय आनन्दरामिय पुस्तका आदिना प्रथक करत उदारता दिवारे है। प नाथूरामना प्रभा, मुनि हिमायुजिजयन्ती, मोहनलाल दलीपद दसाई भी ए, एएएए रा, तथा भाहनलाल भगवानदास शिवरी एम ए साल्मिटर आदि सज्जनों भी हरतरह अपनी सहायुभूतिना प्रदर्शन किया है। मेरी पत्नी कमन्धीन हिन्दार मूफ पत्नानमें और अनुक्रमणिका बनानेमें मेरी सहायता की है। मैं इन सब महात्मानोंका हृदयस आभार मानता हूँ। मुनि मोहनलाल सद्गुरु जैन गुरुमरी, शारानन्द गुमानवा भेन गार्डिय लाइब्रेरी, एल्ल पनालाल सरस्वती भवन तथा म्यू भारत प्रिन्टिंग प्रसन्न अध्ययान मुझ अपना प्रथ सहायता दिया है। इस सदर्शनके तैय्यार करनमें प्रा आनन्दरामर राधुभाई प्रथका स्वाज्ञादमन्त्री तथा अय अनेक मन्थोंने जा मुझ सहायता मिली है, भन उनका सयाख्यान खल्लर किया है। मैं इन सब विद्वानोंका आभार मानता हूँ।

जुवेगावाग,
सादेव थम्बई
२०-६-३४

जगदीशचन्द्र जैन

ग्रंथ और ग्रंथकार



हेमचन्द्र

हेमचन्द्र आचार्य श्वेताम्बर परम्परा में महान प्रतिभाशाली एक असाधारण विद्वान हो गये हैं। हेमचन्द्राचार्यका जन्म ई स १०७८ में गुजरातके धनुका ग्राममें मोड़ गणिक जातिमें हुआ था। हेमचन्द्रके जन्मका नाम चगदेव अथवा चागोदेव था। इनके पिताका नाम चच्च, चाच अथवा चाचिग, आर माताका नाम पाहिनी अथवा चाहिणी था। एक चारकी बात है, कि देवचन्द्र नामके एक जैन साधु धनुकामें आये। उस समय चगदेवका अस्था केवल पाच वर्षकी थी। पाहिनी अपने पुत्रको लेकर जिनमदिरके दर्शन करनेके लिये गई। देवचन्द्र भी इमी मदिरमें ठहरे थे। जिस समय पाहिनी जिन प्रतिविम्बकी प्रक्षिप्ता दे रही थी, उस समय चगदेव देवचन्द्र महाराजके पास आकर बैठ गये। आचार्य चगदेवके शरीरपर असाधारण चिह्न देकर आश्चर्यचकित हुए, आर उन्होंने चगदेवके घर जाकर पाहिनीसे उसके पुत्रको जैन साधु सधमें दाक्षित करनेकी अनुमति मागी। पाहिनीने गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य की, और चगदेवको देवचन्द्र आचार्यके सुपुर्द कर दिया। जब चगदेवके पिता गृहसे लोटे, इस घटनाको सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। अन्तमें सिद्धराजके तत्काशीन जैन मंत्री उदयनने चगदेवके पिताको शांत किया, तथा चगदेवका विधि निधानपूर्वक दीक्षा-संस्कार हो गया। दीक्षाके पश्चात् चगदेवका नाम सोमचन्द्र रखा गया। प्रतिभाशाली सोमचन्द्रने शीघ्र ही तर्क, लक्षण, साहित्य आर आगम इन चार विद्याओंका पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। देवचन्द्रमूरिने अपने शिष्यका अगाध पाण्डित्य देखकर सोमचन्द्रका मृगिकी उपाधिसे विभूषित किया, आर अब सोमचन्द्र हेमचन्द्रमूरिके नामसे कहे जाने लगे।

एक बार हेमचन्द्र आचार्य विहार करते करते गुजरातकी राजधानी अणहिल्लपुर पाटणमें पधारे। उस समय वहा महाराज सिद्धराज जयसिंह राज्य करने थे। सिद्धराजने हेमचन्द्र आचार्यको राजसभामें आमंत्रित किया, आर हेमचन्द्रने अगाध पाण्डित्यको देखकर ब्रह्म मुग्ध हुए। हेमचन्द्र अणहिल्लपुरमें ही रहने लगे। सिद्धराजने कोई अच्छा व्याकरण न देकर

१ सोमप्रभसूरिके अनुार चगदेवने स्वय ही देवचन्द्रसूरिके उपदेश सुनकर उनका शिष्य होना की इच्छा प्रकट की, और व देवचन्द्रमूरिके साथ साथ फिरने लग। देवचन्द्र भ्रमण करते करते जब खभातम आये, वधुपर चगदेवने मामा नमिचन्द्रने चगदेवने मातापिताको समझाया, और देवचन्द्रमूरिने चगदेवको दीक्षा दी।

हेमचन्द्रसे कोई व्याकरण बनानेको कहा । सिद्धराजके प्रार्थना करनेपर हेमचन्द्रने गुजरातके स्थित मिद्धहेमशब्दानुशासन नामके व्याकरणकी रचना की । इस गुजरातके प्रथम व्याकरणके समाप्त होनेपर यह व्याकरण रानाके हाथपर रखकर रान दरभारम लाया गया । सिद्धराज शेरभर्मी थे । एक बार हेमचन्द्र सिद्धराजके साथ सोमनाथके मंदिरमें गये । हेमचन्द्रने निम्न श्लोकसे शिव भगवानको नमस्कार किया, और अपने हृदयका विशाज्जताका परिचय दिया—

मन्वीनाकुरन्तना रागाद्या क्षयमुपागता यम् ।

गह्वा वा विष्णुर्गं हरो विनो वा नमस्तन्मै ॥

यत्र तत्र समय यथा तथा योऽसि साऽम्यभिप्राया यत्र यथा ।

वीतदोषकञ्च स चेद्भूतानेक एव भगवन्माऽस्तु ते ॥

हेमचन्द्रके उपदेशसे सिद्धराजकी जनभर्मेके प्रति प्रीति उत्पन्न हुई, और इनके फलस्वरूप सिद्धराजने पाटणमें 'रायविहार' और सिद्धपुरमें 'सिद्धविहार' नामक चौबीस दिन प्रतिमागले मंदिर बनवाये । सिद्धराजके समय हेमचन्द्र केवल अपने विद्या-वैभवाक कारण सकारक पात्र हुए थे । परन्तु सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपाल हेमचन्द्रको राजगुरुकी तरह मानते थे । हेमचन्द्रके उपदेशसे कुमारपालने अपने रायभरम देव-देवियोंके ऊपर की जानेवाली प्राणियोंकी हिंसाका, और मांस, मद्य, धूत, शिकार आदि दुर्व्यसनोक्त रोक्नेकी घोषणा कराई, और जनभर्मेके सिद्धार्थोक्त अभिजातिक प्रचार किया ।

हेमचन्द्र चारों विद्याओंके समुद्र थे, और अपने असामान्य विद्या-वैभवाके कारण हा कलिकाउमरेश्वके नामसे प्रख्यात थे । मङ्गलपण हेमचन्द्रका महान् पूज्य दृष्टिमें स्मरण करते हैं, और उन्हें चार विद्याआसत्रकी साहित्यके निर्माण करनेमें साक्षात् गह्वाकी उपमा देते हैं । मिद्धहेमशब्दानुशासनके अतिरिक्त हेमचन्द्रने तर्क साहित्य, छन्द, योग, नीति आदि विविध विषयापर अनेक ग्रन्थोंकी रचना करके जैन साहित्यको खूब ही पञ्जित बनाया है । कहा जाता है, कि सब मिलाकर हेमचन्द्रने साढ़े तीन करोड़ श्लोकोंकी रचना का है । हेमचन्द्रके मुख्य ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

१ प्राकृत और अपभ्रंश व्याकरण—प्राकृतव्याकरण ।

२ महाकाव्य (सप्तम और प्राकृत)—द्वयाश्रय महाकाव्य, इसमें भाविकाव्यकी तरह प्रत्येक श्लोकके दो अर्थ निकलते हैं ।

१ एक विद्वान्ने इस व्याकरणकी प्रणया निम्न श्लोकसे की था—

स्रात सृष्टु पाणिनीप्रसूतिन कातनस्था रूथा

सा वर्षी कद्रुसाक्याचनयव शुद्रण चान्द्रेण किम् ।

वि कण्ठभण्णानिभिर्भेठरयत्या मानमन्यैरपि

श्रयन् यदि तावदथमधुग श्रीसिद्धहेमोक्तय ॥ जैन साहित्यनाम्निहास पृ २९४ ।

३ कोप—अभिधानचिंतामणि—समृत्ति [हर्मानाममाला], अनेकार्थसंग्रह, देशीनाम-माला—समृत्ति और निघटुशप ।

४ अल्कार—काव्यानुशासन—समृत्ति ।

५ छन्द—छन्दोनुशासन—समृत्ति ।

६ न्याय—प्रमाणमीमासा [अपूर्ण], अन्ययोगव्यवच्छेदिका और अयोगव्यवच्छेदिका ।

७ योग—योगशास्त्र—समृत्ति [अध्यात्मोपनिषद्] ।

८ स्तुति—गीतरागस्तोत्र ।

९ चरित—त्रिपष्टिश्लोकापुरुषचरित ।

इन प्रयोगोंके अतिरिक्त हेमचन्द्रने ओर भा बहुतसे प्रयोगका निर्माण किया है । निम्नन्देह हेमचन्द्र भारतके एक वैदीप्यमान रत्न थे । हेमचन्द्र आचार्यके विना जैन साहित्य ही नहा बल्कि गुजरात भरका साहित्य सूना कहा जाता है ।

अन्ययोग और अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिकायें

दार्शनिक विचारोंको मस्कृत भाषाके पद्यमें लिखनेकी रीति भारतपर्यमें बहुत समयमें चली आती है । उपलब्ध भारतीय साहित्यमें सर्वप्रथम विज्ञानवादी बौद्ध आचार्य वसुवधुद्वारा विज्ञानवादकी सिद्धिके लिये वास्तव श्लोकरूपमें त्रिंशिका, और तीस श्लोकरूपमें त्रिंशिकाकी रचना देखनेमें आता है । जन साहित्यमें सबसे पहले प्रसिद्ध जैन दार्शनिक सिद्धसेन द्वारा लिखे द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाओंका रचना की । हरिभद्रने भी त्रिंशतित्रिंशिकाओंको बनाया है । हेमचन्द्रने सिद्धसेनकी द्वात्रिंशिकाओंका अनुकरण करके हा सरल और अत्यन्त मार्मिक भाषामें अन्ययोगव्यवच्छेद और अयोगव्यवच्छेद नामकी दो द्वात्रिंशिकाओंकी रचना की है ।

हेमचन्द्रकी उक्त दोनों द्वात्रिंशिकायें महावीर भगवानकी स्तुतिरूप हैं । इन दोनोंमें बत्तीस बत्तीस श्लोक हैं । इनमें इकतीस श्लोक उपनाति और अन्तका एक श्लोक शिष्यरिणी उन्दमें लिखे गये हैं । अन्ययोगव्यवच्छेदिकामें अन्य दर्शनोंमें दृषणोका प्रदर्शन किया गया है । इसमें आदिके तीन और अन्तके तीन श्लोकोंमें भगवानकी स्तुति, सतरह श्लोकोंमें न्यायवैशेषिक, मीमासा, वेदान्त, साह्य, बौद्ध और चार्वाकदर्शनोंकी समीक्षा, तथा नौ श्लोकोंमें स्याद्वादकी सिद्धि की गई है—

१—स्तुतिरूप उक्त श्लोकोंमें भगवानके अतिशय, उनके यथार्थवाद, नयमार्ग, और निष्पक्ष शासनका वर्णन करते हुए अन्तमें जिन भगवानके द्वारा ही अज्ञानाकारमें पड़े हुए जगतकी रक्षाकी शक्यताका प्रतिपादन किया गया है ।

२—(क) अन्य दर्शनोंके समीक्षामरूप सतरह श्लोकोंमें ४-१० श्लोक तक उक्त श्लोकोंमें न्यायवैशेषिकोंके सामान्यत्रिगोपवाद, न्यायानिष्पवाद, ईश्वरकर्तृत्व, धर्म-प्रतिष्ठा

भेद, सामान्यता भिन्नपदार्थ, आत्मा और मनका भिन्न, बुद्धि ज्ञानि आत्मके गुणके लच्छेदको मोक्ष मानना, आत्माकी सर्वव्यापकता, तथा ज्ञान, जाति और निप्रदन्ध्यानमे मुक्ति मानना—इन सिद्धांतोंकी समझा की गई है।

(ग) ११-१२ में श्लोकम नीगामयोंकी,

(ग) १३ में श्लोकमें ऐतन्नित्याह मायावादकी,

(ग) १४ में म एकान्त सामान्य और एकान्त विराय रूप सध्य-भावक भावकी,

(ड) १५ में मे साध्यदर्शनके निद्राताकी, तथा

(च) १६-१७ में शब्दके प्रमाण और प्रमितिरी अवित्रता, शनाद्री, शून्यवाद, क्षणमगनायकी, और

(छ) २० में श्लोकम चायागदर्शनकी समीक्षा की गई है।

३—येष नौ श्लोकाम प्रथम अनुभूते उपाय, व्यव और धौत्र्यकी भिन्नि, मन्त्रादेश और निरुत्पादेशसे सनभगीका प्रारण, स्याद्वादम विराय जादि त्पराका गडन, एकात्मताको सदन, दुर्नय, नय और प्रमाणता मरण, आर मर्यादकपित नीयोंकी अज्ञानताके प्रकृषणके साथ स्याद्वादकी सर्वावृत्ता मित्र की गई है।

अयोग्यव्यञ्छेदिका नामकी दुमरी द्वारिणिनाने स्वपक्षकी भिन्नि की गई है। अयोग्यव्यञ्छेदिका ओष अयोग्यव्यञ्छेदिकाके श्लोकोंका उल्लेख हेमचन्द्रन प्रमाणनीमानावृत्ति, योग्याखवृत्ति आदि प्रयोग मित्रता है, हमने माटम होता है इन प्रथाक बननेसे पहले ही इन द्वारिणिनाआकी रचना हो चुकी थी। अयोग्यव्यञ्छेदिकाम हेमचन्द्र आचार्यने त्रिभिन्निके जगमको मदीय सिद्ध करके निनगायत्री महत्ताका विभिन्न प्रकारमे तदा आजमिनी भाषामें प्रतिपादन किया है। हेमचन्द्रचापका मुट्ट निश्चय है, कि तैत्तिर आगमामें हिंसा आदि का निराय पाया जाता है, अतएव पूजापरिगम रचित यमार्थवादी निन भगवानका हितोपदेशी शासन है। प्रमाणिक हो सकता है। निन शास्त्रके सर्वोच्छ और कन्याणरूप होने पर भी जो लोग निन शासनका उपक्षा करते हैं, यन् उन लोगोंके दुष्कर्मका ही फल समझना चाहिये। हेमचन्द्र घोषणा करके कहते हैं कि नीतराको जोड़कर दूसरा जोड़ देन, आर अनकातका जोड़कर दूसरा जोड़ें वासना नहीं है—

इमा समस्त प्रतिपक्षमाणिणामुदारघोषामनरोपणा तुये ।

न नीतरापरमरिस्त देवत न चाधनेनान्तघृते नयमिधिति ॥

अतमें हेमचन्द्र निनदर्शनके प्रति अपना पक्षपात आर निनर दर्शनके पनि द्वय भावका निराकरण करते हुए अपने समदर्शनकी भावनाको व्यक्त करत है, आर यथार्थवाद गुणक कारण निनशासनकी हा महत्ता सिद्ध करते हैं—

न श्रद्धयन् त्वयि पक्षपातो न द्वयमात्रादन्धि परेषु ।

यमान्मानपरीक्षया तु त्वामन् नीर प्रमुनाश्रिता स्म ॥

टीकाकार मल्लिपेण

मल्लिपेण नामके अनेके जैन आचार्य हो गये हैं। हेमचन्द्रकी अन्ययोगव्यवच्छेदिकाके ऊपर स्याद्वादमजरी नामकी टीका लिखनेवाले प्रस्तुत मल्लिपेणसुरि इनेताम्बर विद्वान हैं। मल्लिपेणने अन्ययोगव्यवच्छेद द्वारिशिकाकी टीकाके अतिरिक्त अन्य कानसे प्रयोजी रचना की हैं, ये भारतके कौनसे प्रदेशके रहनेवाले थे, आदि बातोंके सब्रमें कुछ विशेष पता नहीं लगता। स्याद्वादमजरीके अतमे दी हुई प्रशस्तिमें केवल इतना ही माझ्म होता, हे कि नागेंद्रगच्छायै

१ प नाथूराम प्रेमीजीने अपने विद्वत्सलमाला (प्रथम भाग) में मल्लिपेण नामक दो दिगम्बर विद्वानाका उल्लेख किया है। एक मल्लिपेण उभयभाषाचक्रवर्ती कहे जाते थे, जो संस्कृत और प्राकृत दोना भाषाआक महारथि थे। अब तक इनके महापुराण, नागउमार महाकाव्य, और सज्जनचितवल्गुभ नामके तान प्रबंधका पता लगा है। दूसरे मल्लिपेण ' मल्धारिन् ' के नामसे प्रसिद्ध थे। ये मल्लिपेण शक संवत् १०५० में फाल्गुनवृष्ण नृतायाके दिन ध्रुवनेलगुलम समाधिस्थ हुए थे। प्रवचनसारटीका, पचास्तिकाय टामा, उवालिनीरूप्य, पद्मावतीरूप्य, वज्रपत्रविधान, ब्रह्मविद्या और आदिपुराण नामक ग्रंथ भी मल्लिपेण आचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु यह नहा क। जा सकता कि ये ग्रंथ कौनसे मल्लिपेणने रचे थे।

२ नागेंद्रगच्छगोविन्दवक्षोऽलंकारकौस्तुभा ।

ते विश्वबन्धा नन्यामुहृदयप्रभसूर्य ॥

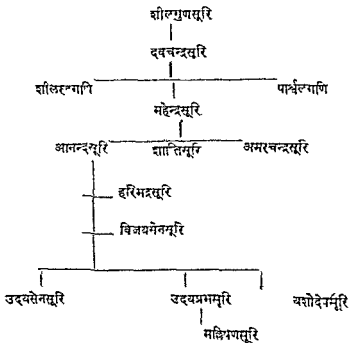
श्रीमल्लिपेणसुरिभिरकारि तत्पदगगनदिनमणिभि ।

वृत्तिरिय मयुरविमितशाकाब्द दीपमहत्ति शनौ ॥

श्रीजिनप्रभसूरिणा साहाय्योद्भिन्नसौरभः ।

धुनाउत्तसतु सता वृत्ति म्याद्वादमजरा ॥

३ मोतीलाल लधाजाने आर्हतमतप्रभाकर पूनास प्रकाशित स्याद्वादमजरीकी प्रस्तावनामें नागेन्द्रगच्छके आचार्योंकी परम्परा निम्न प्रकारसे दी है।—



उदयप्रभेमूरि मड्डिपेणके गुप्त थे, तथा अरु सरत् १२१४ (ई स १२९३) म तीपमालिकाको शनिवारके दिन जिनप्रभमूरिकी सहायतासे मड्डिपेणने स्याद्वादमजरीको समाप्त किया है ।

मड्डिपेणमूरि अपने समयके एक प्रतिभाशाली विद्वान् थे । मड्डिपेण न्याय, व्याकरण और साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित थे । इन्होंने ननन्याय और जनमिद्गतोंके गर्भर अध्ययन करनेके साथ न्याय-वैशेषिक, साय्य, पूरुमामामा, वेदात ओर बौद्धदर्शनके मोलिक प्रस्ता निशाल अध्ययन किया आ । मड्डिपेणकी विषय-वर्णनकी शैली सुस्पष्ट, प्रसाद गुणसे युक्त और हृदयका स्पर्श करनेवाली है । न्याय और दर्शनशास्त्रके कठिनसे कठिन विषयोंकी ज्यत्त सरल और हृदयग्राही भाषामें रखकर पाठकाको मुग्ध करनेकी कलाम मड्डिपेण अत्यन्त कुशल थे । इतिहास्ये स्याद्वादमजरी—मड्डिपेणकी एत मात्र उपर्युक्त रचना—न्यायका मत कहे जानेकी अपेक्षा ' साहित्यका एक अंश ' (Piece of literature) कहा जाता है । यद्यपि जिनप्रभमूरिकी स्याद्वादरत्नावतारिका भी साहित्यके दृग्गपर ही डिम्बी गई है, परन्तु रत्नावतारिकामें समाप्तोंकी दीर्घता और अर्थ-काठिन्य होनेके कारण उसमें भाषाकी अत्यन्त जटिलता आ गई है । इस लिये एक ओर समवेतिका, अष्ट-सप्तमी, प्रभवक्रमक्रमार्थिण्ड आदि जिन न्यायके गहन वनमें, ओर दूसरी ओर स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नावतारिका जैसी मित्र और घोर अट्टामेंसे निकलकर स्याद्वादमजरीको विग्राम करनेका सजागसुदर आधुनिक पाठ कहा जा सकता है । यहापर प्रत्येक दर्शनके महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंको बहुत स्पष्टमें अत्यन्त सरल, स्पष्ट और मनोरञ्जक भाषामें वर्णन किया गया है ।

१ उदयप्रभमूरिने धर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरभासदि, उपदेशाभाषणकार्त्तिक आदि धर्माकी रचना की है ।

२ जिनप्रभमूरिने ताथकव्य जितितान्तिस्तव आदि ग्रन्थ धर्याये है ।

३ उदाहरण त्रिंश—ह हि लयमाणाऽधारादीशोऽध्याप्याक्षरक्षारनिरन्तर, तत्र इत्था इदममानस्याद्वादमहासुदा सुदितानिप्रप्रमेयमहसात्तुगतगत्तरगर्भगिसगतोभाप्रभावन जतुत्पलनरभ्राणिशुभूविष्टगमाऽभिरामात्तु उपरिच्छ दसन्दाह गालासन्नमाननिबुत्त, निरुपमनापामहायानत्रन्याऽनारपवषणपूरुपप्रत्यमाभाप्राप्तवृत्तरत्तविशेषे, वचन वचनारधनाऽनवशगपरम्पराप्रमात्तालजटिल, वचन सुदुमारकान्तालकनायास्तोत्तरलाकनौचित्यप्रवरकरिबने वचिदनेगन्तवाशोपकल्पितानव्यवधानयनेगेगोसित्ताहानरूपणाद्रिदिश्रान्यमानननर्त्तवचनप्रजनचक्रता, वचिदप गताशेषशेषानुमानभिधानोद्भूतमानाममानपाटी सुच्छउत्ताऽच्छोटात्तच्छदुत्तच्छशास्त्ररत्तसत्तयमानमात्तुदमगडल प्रवणच्छमत्कारे, वचिने ताधिकप्रथप्रथिसाधममयत्तवनापव्यापितायवविधानप्रदापयमात्तमानजाल मणिपणी न्दभीरुणे सहृदयैश्चान्तिवर्णाई नैयायकपरत्रिंशत्तवर्तिमुविदिउमुग्धोतनाम वयास्मद्गुरुभादेवसूरिभिर्निरचित स्याद्वादरत्नाकरे । स्याद्वादरत्नावतारिका पृ २ ।

उपाध्याय यशोभिजयानी स्याद्वादमजरीके ऊपर स्याद्वादमजपा नामकी वृत्ति लिखी है ।
स्याद्वादमजरीका उल्लेख माप्रजाचार्यने सर्वदर्शनसप्रहमे किया है ।

मल्लिषेण हरिभद्रनृरिंकी कोटिके सरल प्रकृतिके उदार ओर मयस्थ विद्वान् ये ।
सिद्धसेन आदि जैन विद्वानोंकी तरह मल्लिषेण भी ' सम्पूर्ण जेनेतर दर्शनोंके समूहको जनदर्शन'
कहकर ' अग्रजन्त्याय ' का उपयोग करते हैं । अन्य दर्शनोंके विद्वानोंको पशु, वृषभ आदि
असभ्य शब्दोंसे न कहकर वेदान्तियोंको सम्पगृष्टि, व्यासको ऋषि, कपिलको परमर्षि, उदयनको
प्रामाणिकप्रकाण्ड रूपसे उल्लेख करना, तथा श्वेताम्बर होते हुए भी ममतभद्र, विद्यानन्द आदि
दिगम्बर विद्वानोंके नि मकोच भाससे उद्धरण देना मल्लिषेणकी धार्मिक सहिष्णुताके साथ उनके
समदर्शीपनेकी भावनाको स्पष्ट रूपसे प्रमाणित करता है । स्याद्वादमजरीमें सर्वज्ञसिद्धिकी
चर्चाके प्रसंगपर भी मल्लिषेण ब्रह्मिमुक्ति और केरलिमुक्ति जैसे दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके
प्रिनादस्थ प्रश्नोंके विषयमें मोन रहते हैं, इससे भी प्रतीत होता है, कि अथ दिगम्बर और
श्वेताम्बर आचार्योंकी तरह मल्लिषेणको साम्प्रदायिक चर्चाओंमें कोई भी रस नहीं था । अनेक
वृत्तोंसे पुष्पोंको चुनने समान अनेक दर्शन सत्रधी शाखोंसे प्रमेयोंको चुन चुनकर निरसन्देह
मल्लिषेणसूरिने ' अकृत्रिमबहुमति ' जाली म्याद्वादमजरी नामकी माला गूथकर जनदर्शनके
साहित्यको खूब ही अलंकृत बनाया है ।

स्याद्वादमजरीका विहंगावलोकन

श्लोक १-३

ये श्लोक भगवानकी स्तुतिरूप है । इन श्लोकमें चार अतिशयों सहित भगवानके
यथार्थताका प्ररूपण करते हुए भगवानके शासनकी सर्वोत्कृष्टता बताई गई है ।

१ मोहनलाल दुलीबंद देसाइने अपने ' जैनसाहित्यना इतिहास ' नामक पुस्तकके ६४५ पृष्ठपर
उपाध्याय यशोभिजयकी उपलब्ध अग्रस्त प्रतियाम इस श्लोक उल्लेख किया है ।

२ यदवोचदात्राय स्याद्वादमजयाम्-

अनेकान्तात्मक वस्तु गोचर मवसविदाम् ।

एकदेशविशिष्टोऽथ नयस्य विषयो मन ॥

न्यायानामकनिष्ठाना प्रवृत्तौ श्रुतवत्सनि ।

सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यते ॥

अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्

यथा परे मन्मरिण प्रवादा ।

नयानशेषानविशेषामि टन्

न पक्षपानी समयन्तयाहत् ॥ सर्वदर्शनसप्रह-आहतदर्शन ।

उक्त तीन श्लोकाम पहलके दो श्लोक सिद्धसेनने न्यायावतारके, और अन्तिम श्लोक हेमचन्द्रने
अन्ययोगव्यपच्छेदिकां है । मालूम नहीं ये श्लोक स्याद्वादमजरीके कतके नामसे कैसे . . .

श्लोक ४-१०

इन छह श्लोकोंमें न्याय-शैक्षिकोंके निम्न सिद्धांतोंपर विचार किया गया है—

- (१) सामान्य और विशेष भिन्न पदार्थ नहीं हैं।
- (२) वस्तुको एकाक्षत नित्य अथवा एकाक्षत-अनित्य मानना न्यायमगत नहीं है।
- (३) एक, सर्व-यापी, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और त्रिच ईश्वर जगत्का कर्ता नहीं हो सकता।
- (४) धर्म-यमोंमें समान्य मन्त्र नहीं बन सकता।
- (५) सत्ता (सामान्य) भिन्न पदार्थ नहीं है।
- (६) ज्ञान जामासे भिन्न नहीं है।
- (७) आत्माके बुद्धि आदि गुणोंका नाश होनेको मोक्ष नहीं कह सकते।
- (८) आत्मा सर्वव्यापक नहीं हो सकती।
- (९) उल, जाति, निग्रहमान आदि तन्माश्रय कारण नहीं हो सकते।

तथा—

(क) तम (अधकार) अभावग्रह्य नहीं है, बल्कि वह आकाशकी तरह स्वतंत्र द्रव्य है, और वह पौष्टिक है।

(ख) 'अप्रच्युत, अनुपपन्न और सशब्दित' नियमका उद्देश्य मानना ठीक नहीं है। 'पदार्थके स्वरूपका नाश नहीं होना' ही नियमका उद्देश्य ठीक हो सकता है।

(ग) किरणें गुणग्रह्य नहीं हैं, उन्हें तैत्तिरीय पुद्गलग्रह्य मानना चाहिये।

(घ) नैयायिकोंका प्रमाण, प्रमेय आदिक उद्देश्य दोष पूर्ण है।

इसके अतिरिक्त इन श्लोकोंमें—

(अ) जैनदृष्टिसे आकाश आदिमें नियानियम,

(ब) पतञ्जलि, प्रशस्तकार और बौद्धोंके अनुसार वस्तुआकाश नियानियम,

(स) अनिष्पन्नातनादी शब्दोंके क्षणिकताके दुष्प्रमाण,

(द) वैदिक संहिता, स्मृति आदिके वाक्योंमें पूर्वपरनिरोध, तथा

(इ) केरलिसमुद्रांत अस्थानोंमें जैनसिद्धांतके अनुसार आम-व्यापकताकी सगणिका

प्ररूपण किया गया है।

श्लोक ११-१२

इन श्लोकोंमें पूर्वमासकोंके निम्न सिद्धांतोंपर विचार किया गया है—

- (१) वदाम प्रतिपादित हिंसा धमका कारण नहीं हो सकती।
- (२) श्राद्ध करनेसे पितरोंकी वृत्ति नहीं बढ़ती।
- (३) अपौरुषेय वेदको प्रमाण नहीं मान सकते।

(४) ज्ञानको म्वपरप्रकाशक न माननेसे अनेक दूषण आते हैं, इम त्रिषे ज्ञानको स्व ओर परका प्रकाशक मानना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त इन श्लोकोंमें—

(क) जिन मंदिरके निर्माण करनेका विमान,

(ख) साम्ब्य, वेदान्ती ओर व्यास ऋषिका याज्ञिक हिंसाका विरोध, तथा

(ग) ज्ञानको अनुव्ययसायगम्य माननेवाले न्यायवैशेषिकोंका सटन किया गया है ।

श्लोक १३

इम श्लोकमें ब्रह्माद्वैतवादियोंके मायावादका खडन किया गया है । यहापर प्रत्यक्ष प्रमाणको विधि और निषेध दोनों रूप प्रतिपादन किया है ।

श्लोक १४

इस श्लोकमें एकांत सामान्य और एकान्त विशेष वाच्य—वाचक भावका खडन करते हुए कथचित् सामान्य ओर कथचित् विशेष वाच्य—वाचक भावका समर्थन किया गया है । इस श्लोकमें निम्न महत्वपूर्ण विषय आये हैं—

(१) केवल द्रव्यास्तिकनय अथवा समग्रनयको माननेवाले अद्वैतवादी, साम्ब्य और मीमांसकोंका सामान्यैकान्तवाद मानना युक्तियुक्त नहीं है ।

(२) केवल पर्यायास्तिकनयको माननेवाले मौद्योंका विशेषैकान्तवाद ठीक नहीं है ।

(३) केवल नेगमनयको स्वीकार करनेवाले न्याय—वैशेषिकोंका स्वतंत्र ओर परस्पर निरपेक्ष सामान्य-विशेषवाद मानना ठीक नहीं है ।

तथा—

(क) शब्द आकाशका गुण नहीं है, वह पौद्गलिक है, ओर सामान्य-विशेष दोनों रूप है ।

(ख) आत्मा भी कथचित् पौद्गलिक है ।

(ग) अपोह, सामान्य अथवा विधिको शब्दार्थ नहीं मान सकते ।

श्लोक १५

इम श्लोकमें सात्त्विकी निम्न मान्यताओंकी समीक्षा की गई है—

(१) चित्तशक्ति (पुरुष) को ज्ञानसे शून्य मानना परस्पर विरुद्ध है ।

(२) बुद्धि (महत्) का जड़ मानना ठीक नहीं है । अहकारको भी आत्माका ही गुण मानना चाहिये, बुद्धिका नहीं ।

(३) सत्कार्यवाद माननेवाले साम्ब्य लोगोका आकाश आदिका पांच तत्त्वोंसे उत्पत्ति मानना असंगत है ।

(४) बध पुरुषके ही मानना चाहिये, प्रकृतिके नहीं ।

(५) वाक्, पाणि आदि का पृथक् इन्द्रिय नहीं कह सकते, इस विषय पर ही इन्द्रिया माननी चाहिये ।

(६) केवल ज्ञान मात्रसे मोक्ष नहीं हो सकता ।

श्लोक १६-१९

इन श्लोकोंमें ज्ञानोंके निम्न मुख्य सिद्धान्तोंपर विचार किया गया है—

(१) प्रमाण और प्रमाणके फलको मर्यादा अभिन्न त मानकर कथंचित् भिन्नाभिन्न मानना चाहिये ।

(२) सम्पूर्ण पदार्थोंको एकात्म रूपसे क्षणिकता न मानकर उत्पाद, व्यय और श्रवण सहित स्वीकार करना चाहिये ।

(३) पदार्थोंके ज्ञानमें तदुत्पत्ति और तत्कारणको कारण न मानकर तदुत्पत्ति स्वयं कारण मानना चाहिये ।

(४) विज्ञानकारी ज्ञानोंका विज्ञानादिन मानना ठीक नहीं है ।

(५) प्रमाता, प्रमेय आदि प्रमाणोंसे सिद्ध होते हैं, इस विषये माध्यमिक बौद्धाका शून्यवाद युक्तिसंगत नहीं है ।

(६) बौद्धाके क्षणभंगवादमें अनेक दोष जाते हैं, इस विषये क्षणभंगवादका विज्ञान दोष पूर्ण है ।

(७) क्षणभंगवादकी सिद्धिके विषये ज्ञान क्षणिकता परस्परानुप कमाना अथवा सतानको मानना भी ठीक नहीं बनता ।

तथा—

(क) नैयायिकोंके प्रमाण और प्रमितिम एकान्त भेद नहीं बन सकता ।

(ख) आत्माकी सिद्धि ।

(ग) सत्यकी सिद्धि ।

श्लोक २०

इस श्लोकमें चार्वाक मनके सिद्धान्तोंका खण्डन किया गया है ।

श्लोक २०-२९

इन श्लोकोंमें स्वपक्षका समर्थन करते हुए त्यागादीकी सिद्धि की गई है । इन श्लोकोंमें निम्न सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है—

(१) प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रुवमे युक्त है । ध्रुवकी अपेक्षा वस्तुमें ध्रुव और पर्यायकी अपेक्षा सदा उत्पाद और व्यय होता रहता है । उत्पाद, व्यय और ध्रुव परस्पर सापेक्ष है ।

(२) आत्मा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आदि सम्पूर्ण द्रव्योंमें नाना अपेक्षाओंसे नाना धर्म रहते हैं, अतएव प्रत्येक वस्तुको अनन्तधर्मात्मक मानना चाहिये । जो वस्तु अनन्तधर्मात्मक नहीं होती, वह वस्तु सत् भी नहीं होती ।

(३) प्रमाणशक्त्य और नयशक्त्यसे वस्तुमें अनन्त धर्मोंकी सिद्धि होती है । प्रमाणशक्त्यको सकलादेश और नयशक्त्यको विकलादेश कहते हैं । पदार्थके धर्मोंका काल, आत्मरूप, अर्थ, सत्त्व, उपकार गुणित्वादेश, ससर्ग और शब्दोंकी अपेक्षा अभेदरूप कथन करना सकलादेश, तथा काल, आत्मरूप आदिकी भेद निरक्षासे पदार्थोंके धर्मोंका प्रतिपादन करना विकलादेश है । स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्तिअवक्तव्य, स्यान्नास्तिअवक्तव्य, ओर स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्यके भेदसे सकलादेश और विकलादेश प्रमाणसप्तभगी और नयसप्तभगीके सात सात भेदोंमें विभक्त है ।

(४) स्याद्वादियोंके मतमें स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल ओर मानकी अपेक्षा वस्तुमें अस्तित्व है, ओर पर द्रव्य, क्षेत्र, काल ओर मानकी अपेक्षा नास्तित्व है । निस्त अपेक्षासे वस्तुमें अस्तित्व है, उमी अपेक्षासे वस्तुमें नास्तित्व नहीं है । अतएव सप्तभगी नयमें विरोध, वैयधिकरण्य, अनन्यथा, सत्त्व, व्यतिकर, सशय, अप्रतिपत्ति और अभाव नामक दोष नहीं आ सकते ।

(५) द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा वस्तु नित्य, सामान्य, अनाद्य, ओर सत् है, तथा पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा अनित्य, विशेष, वाच्य ओर असत् है । अतएव नित्यानित्यवाद, सामान्यविरोधवाद, अभिधानानभिधान्यवाद तथा सदसद्वाद इन चारों वादोंका स्याद्वादमें समावेश होनाता है ।

(६) नयरूप समस्त एकातवादोंका समन्वय करनेवाला स्याद्वादका सिद्धांत ही सर्वमान्य हो सकता है ।

(७) भावाभाव, द्वैताद्वैत, नित्यानित्य आदि एकातवादीमें सुख-दुःख, पुण्य-पाप, वचन-मोक्ष आदिकी व्यवस्था नहीं बनती ।

(८) वस्तुके अनन्त धर्मोंमेंसे एक समयमें किसी एक धर्मकी अपेक्षा लेकर वस्तुके प्रतिपादन करनेको नय कहते हैं । इस नियम नितने तरहके वचन होने हैं, उतने ही नय हो सकते हैं । नयके एकमें लेकर मत्त्वान भेद तक हो सकते हैं । सामान्यमें नेगम, सप्रद, व्यवहार, ऋजुमूल, शब्द, समभिरुद्ध और एवभूत ये सात भेद किये जाते हैं । न्यायपरमैयिक केवल नेगमनयके, अद्वैतवाद ओर साध्य केवल सप्रहनयके, चार्वाकयोग केवल व्यवहारनयके, ब्राह्म लोग केवल ऋजुमूलनयके, और प्रैयाकरण केवल शब्दनयके माननेवाले हैं । प्रमाण

सम्पूर्ण नयस्व होता है। नयनात्रयोमें भ्यात् शब्द लगाकर बोलनेको प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष आर परोक्षके भेदस प्रमाणके दो भेद होते हैं।

(९) नितने जाय व्यवहार राशिसे मोक्ष जाते हैं, उतने ही जाय अनादि निगादकी अव्यवहार राशिसे निकलकर व्यवहार राशिमें आ जाते हैं, और यह अव्यवहार राशि आदि रहित है, इम लिये जीवोके सतत मोक्ष जाने रहनेपर भी यह समार जीवोसे कभी पानी नहीं हो सकता।

(१०) पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ओर वनस्पतिमें जीवत्वकी सिद्धि।

(११) प्रत्येक दर्शन नयनादमे गर्भित होना है। जिस समय नयस्व दर्शन परम्पर निरपेक्ष भावमे वस्तुका प्रतिपादन करते हैं, उस समय ये दर्शन परसमय कहे जाते ह। जिम प्रकार सम्पूर्ण नदिया एक समुद्रम जाकर मिलता ह, उसी तरह अनेकात दर्शनमे सम्पूर्ण जैतेतर दर्शोका समन्वय होता ह इम लिये जेनदर्शन स्वसमय ह।

श्लोक ३०-३२

इन श्लोकाम महानीर भगवानकी स्तुतिका उपसहार करते हुए अनेकातपादसे ही जगतका उद्धार होनेकी शक्यताका प्रतिपादन किया गया ह।

जैनदर्शनमें स्याद्वादका स्थान

एकेनाकर्पन्ती इत्ययन्ती वस्तुत्वमितरेण ।

अन्तेन जयति जेनी नीतिर्नानामिने गोपी ॥ (अमृतचन्द्र)

स्याद्वादका मौलिक रूप और उसका रहस्य—विज्ञानने हमें ज्ञानको भले प्रकार सिद्ध कर दिया है, कि जिस पदार्थको हम नित्य और ठोस समझते हैं, वह पदार्थ बड़े बेगसे गति कर रहा है, जो हमें काले, पीले, लाल आदि रंग दिखाई पड़ते हैं, वे सब सफेद रंगके रूपान्तर हैं, जो सूर्य हमें छोटसा आर मिलकुछ पास दिखाई देता है, वह पृथ्वी मडलसे साढ़े बारह लाख गुना बड़ा और यहाँसे नौ करोड़ तीस लाख मीलकी ऊँचाईपर है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है, कि जब हम अनन्त समय बीत जानेपर भी ब्रह्माण्डकी छोटीसे छोटी वस्तुओंका भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके, तो जिसको हम दार्शनिक भाषामें पूर्णमत्त्व (Absolute) कहते हैं, उसका साक्षात्कार करना कितना दुष्कर होना चाहिये। भारतके प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने तत्त्वज्ञान सबकी इस रहस्यका ठीक ठीक अनुभव किया था। इसी-लिये जब कभी आत्मा, परब्रह्म, पूर्णसत्य आदिके विषयमें पूर्वकालकी परिपक्वोंमें प्रश्नोंकी चर्चा उठती थी, तो 'नैषा तर्केण मतिरापनेया (कठ), नायमात्मा प्रयत्नेन लभ्यो न मेयया न बहुना श्रुतेन (मुण्डक), सव्ये सरा नियदति तद्धा तत्त्वं न विज्जइ (आचाराग), परमार्थो हि आर्याणां तूर्णोभावा (चन्द्रकौर्ति)—यह कैवल अनुभवगम्य है, वह वाणी और मनके अगोचर है, वहाँ जिह्वा रुक जाती है, और तर्क काम नहीं करती, वास्तवमें तूर्णोभाव ही परमार्थ सत्य है, आदि वाक्योंसे इन शकाओंका समाधान किया जाता था। इसका मतलब यह नहीं, कि भारतीय ऋषि अज्ञानवादी थे, अथवा उनको पूर्णसत्यका यथार्थ ज्ञान नहीं था। किन्तु इस प्रकारके समाधान करनेसे उनका यही अभिप्राय था, कि पूर्णसत्य तक पहुँचना तलवारकी धार पर चलनेके समान है, अतएव इसकी प्राप्तिके लिये अधिकसे अधिक साधनाकी आवश्यकता है। वास्तवमें जितना जितना हम पदार्थोंका विचार करते हैं, उतने ही पदार्थ विशीर्यमाण दृष्टिगोचर होते हैं। महर्षि सुकुरातके शब्दोंमें, हम जितना जितना शालोंका अपलोकन करते हैं, हमें उतना ही अपनी मूर्खताका अधिकाधिक आभास होता है।

जैनदर्शनका स्याद्वाद भी इसी तत्त्वका समर्थन करता है। जैन दार्शनिकोंका सिद्धांत है, कि मनुष्यकी शक्ति बहुत अल्प है, और बुद्धि बहुत परिमित है। इस लिये हम अपनी उन्नत दशा में हजारों-लाखों प्रयत्न करनेपर भी ब्रह्माण्डके अमर्य पदार्थोंका ज्ञान करनेमें असमर्थ रहते हैं। हम विज्ञानको ही लेते हैं। विज्ञान अनन्त समयसे विविध रूपमें प्रकृतिका अभ्यास करनेमें जुटा है, परन्तु हम अभी तक प्रकृतिके एक अंग मात्रको भी पूर्णतया नहीं जान

१ पात्रिमाल्य विचारक ब्रेड्ले (Bradley), बर्गसन (Bergson) आदि विद्वानोंने भी सत्यके बुद्धि और तर्क के बाहर उसे Experience और Intuition का विषय बताया है।

सबे । दर्शनशास्त्रकी भी यही दशा है । सृष्टिके आरम्भसे आज तक अनक ऋषि-महर्षियान तरयज्ञान सखी अनेक प्रकारके नये नये विचारोन्नी खान की, परतु हमारी दार्शनिक मुधिया आन भी पहलेकी तरह उन्नी पड़ी हुई है । स्याद्वाद यही प्रतिपादन करता है, कि हमारा ज्ञान पूर्णमय नह। कहा जा सकता, यह पदार्थोकी जसुक अपेक्षाको लेकर ही होना ह, इम त्रिये हमारा ज्ञान आपेक्षिक सत्य ह । प्रत्येक पदार्थम अनन्त धर्म ह । उन अनन्त धर्मोसे हम एक समयम कुछ धर्माका ही ज्ञान कर सकते है, और दूसरोको भी कुछ धर्माका ही प्रतिपादन कर सकते है । जन तत्त्ववेत्ताओंका रुधन ह, कि निम प्रकार कई अपे मनुष्य किमी हाथोके भिन भिन अययोको हाथमे टटोकर हाथाके उन भिन भिन अययोको ही पूर्ण हाथी समझकर परस्पर लडते है, ठीक इमी प्रकार ससारका प्रत्येक दार्शनिक सयक कन्ड अग्रामात्रको ही जानता ह, आर सत्यके इस अग्रामात्रको सम्पूर्ण मय समझकर परस्पर मित्राद आर वितण्डा खड़ा करता ह । सचमुच यदि ससारके दार्शनिक अपने एकात आगहका ठोडकर अनकात अथवा स्याद्वाददृष्टिसे काम लेने लग, तो हमारे जावनक बहुतेमे प्रश्न सहजम हा हठ हो सकते ह । वास्तवम सय एक ह, केन्ड सयकी प्रातिके मार्ग जुदा जुदा ह । अल्प शक्तिवाले उन्मथ जीन इम सत्यका पूण रूपमे ज्ञान करनेमें अममर्ष है, इस लिये उनका सम्पूर्ण ज्ञान आपेक्षिक सय ही कहा जाता ह । यही जेन दर्शनकी अनेकात दृष्टिका गूढ़ रहस्य ह ।

यहा एक शका हा सकती है, कि इम सिद्धान्तके अनुसार हम केन्ड आपेक्षिक अथवा अर्थसत्यका ही ज्ञान हो सकता ह, स्याद्वादसे हम पूर्ण सय नहीं जा सकता । दूसरे शब्दाने कहा जा सकता ह, कि स्याद्वाद हमें अर्थ-सत्योके पाम ले जाकर पत्रक देना है, आर इही अर्थसत्योको पूर्ण सत्य मानेनका हमे प्ररणा करना ह । परतु कन्ड निश्चित-अनिश्चित अर्थसत्योका मिलाकर एक सय रख देनेमे यह पूर्णमय नहीं करा जा सकता । तथा किमी न किमी रूपम पूण सत्यको माने विना कई भी दर्शन पूण कह जायेका जयिकागी नह। है । इम भावको भारतके प्रसिद्ध विचारक विद्वान् प्रो रायाकिशननने निम्न प्रकारसे उपस्थित किया ह—

The theory of Relativity cannot be logically sustained without the hypothesis of an absolute. The Jains admit that things are one in their universal aspect (Jati or Karana) and many in their particular aspect (Vakti or Karya) Both these, according to them are partial points of view. A plurality of truths is admittedly a relative truth. We must rise to the complete point of view and look at the whole with all the wealth of its attitudes. If Jainism stops short with plurality, which is at best a relative and partial truth, and does not ask whether there is any higher truth pointing to a one which particularises itself in the objects of

the world, connected with one another, vitally, essentially and immanently, it throws overboard its own logic and exalts a relative truth into an absolute one¹

इस शकाका समाधान बहुत स्पष्ट है, और वह यह है, नैसा कि ऊपर बताया गया है, कि स्याद्वाद पदार्थोंके जाननेकी एक दृष्टि मात्र है। स्याद्वाद स्वयं अंतिम सत्य नहीं है। यह हमें अन्तिम सत्य तक पहुँचानेके लिये केवल मार्गदर्शकका काम करता है। स्याद्वादमें केवल व्यवहार सत्यके जाननेमें उपस्थित होनेवाले विरोधोंका ही समापन किया जा सकता है, इसीलिये जैन दर्शनकारोंने स्याद्वादको व्यवहार सत्य माना है। व्यवहार सत्यके आगे भी जनसिद्धातमें निरपेक्ष सत्य माना गया है, जिसे जैन पारिभाषिक शब्दोंमें केवलज्ञानके नामसे कहा जाता है। स्याद्वादमें सम्पूर्ण पदार्थोंका क्रम क्रमसे ज्ञान होता है, परन्तु केवलज्ञान सत्यप्राप्तिकी वह उत्कृष्ट दशा है, जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ और उन पदार्थोंकी अनन्त पर्यायोंका एक साथ ज्ञान होता है। स्याद्वाद परोक्षज्ञान श्रुतबानामे गर्भित होता है, इस लिये स्याद्वादसे केवल इन्द्रियजन्य पदार्थ ही जाने जा सकते हैं, किन्तु केवलज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है, इस लिये केवलज्ञानमें भूत, भविष्य और वर्तमान सम्पूर्ण पदार्थ प्रतिभासित होते हैं। अतएव स्याद्वाद हमें

१ इन्डियन फिलसफी जि १ पृ ३०५६। इसी प्रकारके विचार 'इन्डियन फिलसफिकल कॉमिन्स' जिसे अधिवेशनके समय Jain Instrumental theory of knowledge नामक लेखन समित्त हनुमतराव एम ए ने प्रगट किये है। लेखका कुछ अश निम्न प्रकारसे है—

Its great defect lies in the fact that it (the doctrine of Syādvāda) yields to the temptation of an easy compromise without overcoming the contradictions inherent in the opposed standpoints in a higher synthesis

It takes care to show that the truths of science and of every day experience are relative and one-sided, but it leaves us in the end with the view that truth is a sum of relative truths. A mere putting together of half truths definite-indefinite cannot give us the whole truth

२ स्याद्वादसे ही लोकव्यवहार चल सकता है, इस बातको सिद्धमन दिवाररत्न निम्न गायाम् व्यक्त किया है—

जेण विणा लोगस्सचि विवहारो सव्वहा न निव्वडं ।

सस्स भुवणेत्तुत्थुणा णमो अणंगतवायस्स ॥

३ समंतभद्रने आत्तमीमामाम स्याद्वाद और केवलज्ञानके अर्थको स्पष्ट रूपमें निम्न श्लोकमें प्रतिपादन किया है—

तत्त्वज्ञान प्रमाणं त युगपत्प्रवभासम्

भाषि च यज्ञानं

सुत्रमायस्य

ज्ञाननाम वा सर्वस्याम्

कमल जमे-तैमे अर्पित्योंको ही पूर्णसत्य मान लेनेके लिये वाय नहीं करता । किंतु वह सपना दान करनेके लिये अनेक मार्गोंकी खोज करता है । स्वादादका इतना ही कहना है, कि मनुष्यकी शक्ति बहुत सीमित है, इस लिये वह आपेक्षिक सत्यको ही जान सकता है । पहले हम व्यावहारिक विरोधोंका समन्वय करके आपेक्षिक सत्यको प्राप्त करना चाहिये । आपेक्षिक सत्यके जाननेके बाद हम पूर्णसत्य—कमलज्ञान—का साक्षात्कार करनेके अधिकारी हैं ।

स्वादादपर एक ऐतिहासिक दृष्टि—अहिंसा ओर अनेकान्त ये जैनधर्मके दो मूल सिद्धांत हैं । महावीर भगवानने इन्हीं दो मूल सिद्धांतोंपर अधिक भार दिया था । महावीर शारीरिक अहिंसाने पाठन करनेके साथ मानसिक अहिंसा (intellectual toleration) के ऊपर भी उतना ही जोर देते हैं । महावीरका कहना था, कि उपशम वृत्तिसे ही मनुष्यका कल्याण हो सकता है, और यही वृत्ति मोक्षका साधन है । भगवानका उपदेश था, कि प्रत्येक महान् पुरुष भिन्न भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काण्ड ओर भागके अनुसार ही सत्यकी प्राप्ति करता है । इस लिये प्रत्येक दर्शनके सिद्धांत किसी अपेक्षासे सत्य हैं । हमारा कर्तव्य यही है, कि हम व्यर्थके बाद निरादरमें न पड़कर अहिंसा आर शांतिमय जीवन यापन करें । हम प्रत्येक मनुष्यका प्रतिक्षण उत्पन्न होती हुई ओर नष्ट होती हुई देखते हैं, ओर साथ ही हम मनुष्यके नित्यत्वका भी अनुभव करते हैं, अतएव प्रत्येक पदार्थ किसी अपेक्षासे नित्य और सत्य, ओर किसी अपेक्षामें अनित्य आर असत्य, आदि अनेक धर्मोंसे युक्त है । अनेकान्तवाद सत्य की इस प्रकारके विचार प्रायः प्राचीन आगम ग्रंथोंमें देखनेमें आते हैं । एक समय गौतम गणधर महावीर भगवानसे पूछते हैं ' कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है, अथवा अज्ञान स्वरूप ? ' भगवान उत्तर देते हैं, ' कि आत्मा नियमसे ज्ञान स्वरूप है । क्योंकि ज्ञानमें निना आत्माकी वृत्ति नहीं देखी जाती । परन्तु आत्मा ज्ञान रूप भी है और अज्ञानरूप भी है । ज्ञातृपरमैका

१ सत्ययानां जिनप्रवचनस्यैव निबन्धनत्वात् । निमित्त्य निबन्धनमिति चेत् । उच्यते । निबन्धनं चाप्य ' अथा मते नान् अन्नाणे ' इति स्वामी गौतमस्वामिना पृष्ठो ' यारोति गोदमा णाणे णियमा ' अतो ज्ञानं निरभादात्मानं । ज्ञानस्यान्यथातिरेकेण वृत्त्यदशानात् । नयचक्रं लिखितं ।

(जैनसाहित्यमशोधक १-४ पृ १४६)

२ सुधा, एणे वि अह दुवे वि अह जाव अणेगभूयभाउमविण्ण वि अह ।

स केणणे भंत, एणं वि अह जाव ।

सुधा, दब्बण एणे अह, नण्णदसण्ण एणं वि अह, णण्णमण एणन्व ए वि अह अब्ब ए वि अह, अब्बिण्ण वि अह उवण्णण्ण अण्णगभूयभाउमविण्ण वि अह । मातृधमन्था ५-४६ पृ १०७ ।

उ यदोधिन्थयत्ताने इसी भावने निम्न रूपमें व्यक्त किया है—

यथाह सोमिन्प्रभ निम स्वादादसिद्धये ।

दब्बाधादहेमनाइरिंम दग्गानायादुमात्तपि ॥

अपयत्ताध्वयथाभिं प्रदसायविचारत ।

अविभूतभावात्मा पत्रायार्थपरिग्रहान् ॥ अध्यायमार ।

ओर भगवैती आगमोंमें भी एक ही वस्तुको द्रव्यकी अपेक्षा एक, ज्ञान आर दर्शनकी अपेक्षा अनेक, किसी अपेक्षासे अस्ति, किसीसे नास्ति, ओर किन्मी अपेक्षासे अनक्तव्य कहा गया है। प्राचीन आगमोंमें स्याद्वादके सात भगोंका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु यहा त्रिपदी (उत्पाद, व्यय, ध्रुव्य) सिय अथि, सिय णत्ति, द्रव्य, गुण, पर्याय, नय आदि स्याद्वादके सूचक शब्दोंका अनेक स्थानोंपर उल्लेख पाया जाता है। आगम ग्रंथोंके ऊपर ईसाके पूर्व चौथी शताब्दिमें भद्रबाहुकी दस निर्युक्तियोंमें भी इहीं निचारोंको विशेष रूपसे प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् ईसवी सन् प्रथम शताब्दिके आचार्य उमास्त्रातिके तत्त्वार्थाधिगममन्त्र और तत्त्वार्थभाष्यमें अनेकातवादकी और विशेषकर नयवादकी चर्चा विस्तृत रूपमें पायी जाती है। यहा अपिंत, अनपिंत, नयोंके भेद ओर-उपभेदोंका वर्णन विस्तारसे किया गया है। परन्तु यहा तक हमें स्याद्वादके सात भगोंके नामोंका उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

इन सात भगोंका नाम सर्वप्रथम हमें कुन्दकुन्दके पचास्तिनाय और प्रवचनसारमें दिखाई पड़ता है। यहा सात भगोंके केवल नाम एक गाथामें गिना दिये गये हैं। जान पड़ता है, कि इस समय जैन आचार्य अपने सिद्धांतोंपर होनेवाले प्रतिपक्षियोंके कर्कश तर्कप्रहारसे सतर्क हो गये थे, और इसीलिये वीद्वोंके शून्यवादकी तरह जैन श्रमण अनेकातवादको सप्तभगीका तार्किकरूप देकर जैन सिद्धांतोंकी रक्षाके लिये प्रवृत्तिशाल होने लगे थे। इसके पूर्व सप्तभगी नयवाद अथवा अधिकसे अधिक स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य इन तीन मूल भगोंके रूपमें ही पाया जाता है। स्याद्वादको प्रस्तुत करने वाले जैन आचार्योंमें ईसवी सन्की चौथी शताब्दिके विद्वान् सिद्धसेन दिनाकर और समतभद्रका नाम सबसे महत्वपूर्ण है। ये दोनों अपूर्ण प्रतिभाशाली उच्चकोटिके दार्शनिक विद्वान् थे। इन विद्वानोंने जैन तर्कशास्त्रपर समतितर्क, न्यायानुसार, युक्त्यनुशासन, आत्ममीमांसा आदि स्वतंत्र ग्रंथोंकी रचना की। सिद्धसेन और समतभद्रने अनेक प्रकारके दृष्टांतोंसे और नयोंके सापेक्ष आर निरपेक्ष वर्णनसे स्याद्वादका अभूतपूर्व ढंगसे प्रतिपादन किया, तथा जैनेतर सम्पूर्ण दृष्टियोंको अनेकातदृष्टिके अशामान्य बतानेके मिथ्यादर्शनोंके सम्-

१ आया भते, रयणप्पमा पुन्वी भन्ना रयणप्पमा पुडवी ?

गोयमा, रयणप्पमा सिय आया, सिय नो आया,

सिय अनत्तव आया निथ नो आया सिय ।

२ उदधारिच सर्वसिधव समुदीणास्त्वयि नाथ दृश्य ।

न च तामु भवन् प्रददयते प्रावभरामु सरित्त्विबोदधि ॥

हको जेनदशन बताते हुए अपनी मर्मसमस्यामक उदार भावनाका परिचय किया। इनके बाद ईसाकी चौथी पाँचवी शताब्दिमें मल्लुआदि आर जिनभद्रगाणि क्षमाश्रमण नामके श्वेताश्वर विद्वानाका प्रादुर्भाव हुआ। मल्लुआदि अपने समयके मठान तार्किक विद्वान ममदो जाने थे। इन्होंने अनेकानेकानेका प्रतिपादन करनेके लिये नवचक्र अष्टि प्रथाकी रचना की। जिनभद्रगाणि श्वेताश्वर आगमोंके मर्मज्ञ पण्डित थे, इन्होंने विशेषाध्ययकभाष्य आदि ग्रन्थोंकी रचना की। जिनभद्रन प्रायः सिद्धतेन दिनाकरकी शैलीका ही अनुसरण किया। इन विद्वानोंके पश्चात् ईसाकी आठवीं-नौवीं शताब्दिमें अकूत्क आर हरिभद्रका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इन विद्वानोंने स्वाद्वादका नाना प्रकारसे उद्घापोहामक मूर्खताविन्मुख्य विशेषण करते स्वाद्वादको सागोपाग परिपूर्ण बनाया। इस समय प्रतिपक्षी लोग अनेकानेकानेके अनेक तरहके प्रहार करने लग गये। कोई लोग अनकातका साग्य कहते थे, कोई केनउ ठूक हा रूपान्तर कहते थे, आर कोई इसमें विशेष अनन्या आदि दोषोंको बताकर इसका खण्डन थे। ऐसे समयमें अकूत्क आर हरिभद्रने तत्पार्श्वान्तार्किक, सिद्धविनिश्चय, अनेकानेकानेका गाल्पार्तासमुच्चय, पद्दर्शनसमुच्चय आदि ग्रन्थोंका निर्माण करके बड़ी योग्यताके साथ त्याग निवारण किया, और अनकातकी जयपताका फहराई। इसकी नौवीं शताब्दिमें विद्यानन्द और माणिक्यनिदि नामके महान् दिग्गजर विद्वान् हा गये हैं। विद्यानन्द अपने समयके उडे भार नेयाधिक थे। इन्होंने कुमारिल आदि बौद्धिक विद्वानोंके जैनदर्शनपर होनेवाले आक्षेपोंका बड़ा योग्यतासे परिहार किया है। विद्यानन्दने तत्पार्श्वान्तार्किक, अष्टमहेश्वरी, आनपरिज्ञा, आर महान् प्रयोगी लिपिकर अनेक प्रकारसे तार्किक शैलीद्वारा स्वाद्वादका प्रतिपादन आर समर्पण किया है। माणिक्यनिन्दने सर्वप्रथम जैन न्यायको परीक्षामुखके मुत्राम गुप्तकर अपनी अलौकिक प्रतिभाका परिचय देकर जननेयाधिको समुन्नत बनाया है। ईसाकी दसवीं शताब्दिमें होनेवाले प्रभाचन्द्र और अभयदेव महान् तार्किक विद्वान् थे। इन विद्वानाने ममत्तित्तत टाका (वाग्महार्णव), प्रमेयकर्ममार्णव, पायकुमुदचट्रेण्य आदि जैन न्यायके ग्रन्थ रच कर जैन दर्शनकी महान् सेवा की है। इन विद्वानोंके सात्त्विक, वैभाषिक, विज्ञानशास्त्र, शून्यवाद, ब्रह्मवाद, जन्मवाद आदि वादोंका समन्वय करके स्वाद्वादका नेयाधिक पद्धति प्रतिपादन किया है। इनके पश्चात् ईसाकी गहरी शताब्दिमें वादिश्वरमूरि अकलिकाचर्यस्य हेमचन्द्रका नाम आता है। वादिश्वर वादिशक्तिमें अमानरण माने जाते थे। वादिश्वरने स्वाद्वादका स्पष्ट विशेषण करनेके लिये प्रमाणनयतरागेकाठकार, स्वाद्वा रत्नाकर आदि ग्रन्थ लिखे हैं। हेमचन्द्र अपने समयके अमानरण पुराण थे। इन्होंने अथयय

१ सर्वे सिद्धादमणममूहमद्यम अनयगारम् ।

विशययणस्य भगवन्ना सविगमुहृदिममस्य ॥ ममति ३-६५ ।

२ देखो तत्पार्श्वान्तार्किक प्रमाणनयतरागेकाठकार ' सुत्रकी व्याख्या, तथा अनेकानेकानेका ।